UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Sanskrit Literature
Research Link - 162, Vol - XVI (7), September - 2017, Page No. 140-143
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

ऋग्वेद-प्रातिशाख्य में विहित संज्ञाएँ : एक अध्ययन

प्रस्तुत शोधपत्र में ऋग्वेद-प्रातिशाख्य में विहित संज्ञाओं का अध्ययन किया गया है। सम्पूर्ण प्रातिशाख्य ग्रन्थ सूत्र-शैली में उपनिबद्ध है। सूत्र-शैली अत्यंत संक्षिप्त होती है। सूत्र-शैली में प्रणयन करने में ग्रंथकार को अकथनीय प्रयास करने होते हैं। प्रातिशाख्य ग्रंथकारों ने अपने विषयों के निर्वहन के लिए पारिभाषिक शब्दों (संज्ञाओं) का प्रयोग किया है। किसी भी विषय में प्रवेश पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से ही किया जाता है। प्रातिशाख्यों में कथित सूत्रों के निहितार्थ के लिए उसमें कथित संज्ञाओं का ज्ञान परम आवश्यक होता है।

डॉ.अजय कुमार

सम्पूर्ण प्रातिशाख्य ग्रन्थ सूत्र–शैली में उपनिबद्ध हैं। सूत्र–शैली अत्यन्त संक्षिप्त होती है। सूत्र–शैली में प्रणयन करने में ग्रन्थकार को अकथनीय प्रयास करने होते हैं। प्रातिशाख्य ग्रन्थकारों ने अपने विषयों के निर्वहन के लिए पारिभाषिक शब्दों (संज्ञाओं) का प्रयोग किया है। किसी भी विषय में प्रवेश पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से ही किया जाता है। प्रातिशाख्यों में कथित सूत्रों के निहितार्थ के लिए उसमें कथित संज्ञाओं का ज्ञान परमावश्यक होता है।

विशाल अर्थ के सम्पादनार्थ संज्ञाओं का विधान प्रायः ग्रन्थ के आरम्भ में कर दिया जाता है। ग्रन्थ में जहाँ कहीं भी उसका अर्थ प्रतिपादन करना अभीष्ट होता है उस संज्ञा का प्रयोग कर दिया जाता है और विशाल अर्थ का अवबोध कर लिया जाता है।

ऋक् प्रातिशाख्य में अनेक संज्ञाओं का विवेचन किया गया है, जिसका अध्ययन हम इस प्रकार कर सकते हैं :

(1) समानाक्षर संज्ञा :

वर्णमाला में आदि से लेकर आठ अक्षर समानाक्षर संज्ञक होते हैं, ''अष्टौ समानाक्षराण्यादितः''[1] आदि से लेकर आठ अक्षर हैं – अ, आ, ऋ, ॠ, इ, ई, उ और ऊ।

संध्यक्षर संज्ञा : उन पूर्वकथित समानाक्षर संज्ञक वर्णों के अव्यवहित पश्चात्वर्ती चार अक्षर संध्यक्षर कहे जाते हैं। वर्णमाला में स्थित ए, ओ, ऐ और औ अक्षर संध्यक्षर कहे जाते हैं।[2] सन्धि+अक्षर के योग से संध्यक्षर बना है। उपर्युक्त चारों अक्षर दो अक्षरों के योग से बने हैं। इसीलिए इन्हें संध्यक्षर कहा जाता है। जैसे–अ+इ=ए, अ+ऊ=ओ, अ+ए या ऐ = ऐ, अ+ओ या औ = औ।

ततःपद में पञ्चमी प्रयुक्त है। इससे यह ज्ञात होता है कि समानाक्षरों के पश्चात् संध्यक्षर हैं, फिर तो सूत्रकार ने उत्त्राणि पद का प्रयोग क्यों किया?

इस विषय में भाष्कार उव्वट का कहना है कि संध्यक्षरों में ऌ और ॡ का प्रयोग न हो जाय। आगे वर्णित स्वर संज्ञा के विवेचन से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी।

स्वर–संज्ञा : ऋक् प्रातिशाख्य के प्रथम पटल का तृतीय सूत्र स्वर संज्ञा विधायक है। इस विषय में ऋक्प्रातिशाख्यकार शौनक कहते हैं, ''एतेस्वराः''[3] इसके पूर्व समानाक्षर व संध्यक्षर नामक दो संज्ञाओं का विश्लेषण किया गया है। इन दोनों को समाहित करते हुए प्रयुक्त सूत्र में स्वर का प्रतिपादन किया गया है। ये समानाक्षर व संध्यक्षर स्वर हैं। वर्ण विशेष का वाचक स्वर शब्द स्वृ धातु से अच् प्रत्यय करने पर बना है। इसका व्युत्पत्तिलभ्यार्थ है – शब्द करना। ''स्वर्यन्ते शब्दन्तइति स्वराः''[4] अर्थात् किसी अन्य की सहायता के बिना स्वयम् उच्चारित होते हैं, इसलिए स्वर कहलाते हैं। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में भी कहा गया है कि, ''स्वयं राजन्ते नान्येन व्यञ्जत इति स्वराः''[5] अर्थात् जो स्वयं उच्चारित होते हैं अन्य के द्वारा उच्चारित नहीं होते हैं, वे स्वर हैं। स्वरों में अ, आ, ऋ, ॠ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, ऐ, औ इन बारह की गणना की गई है।

अनुस्वार–संज्ञा : अनुस्वार एक वर्ण विशेष का नाम है। इसे चिन्ह से व्यक्त किया जाता है। अनुस्वार शब्द 'अनु' उपसर्ग पूर्वक 'स्वृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न किया गया है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार अनुस्वार शब्द का अर्थ हुआ – वह वर्ण जिसका उच्चारण अन्य वर्णों के पश्चात् होता है। इसी कारण अनुस्वार को 'अनुगामी ध्वनि' भी कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि अनुस्वार अपने पूर्ववर्ती स्वर के बिना स्थित नहीं हो सकता।

अतः यह पराश्रित ध्वनि है।

अनुस्वार का उल्लेख करते हुए ऋक्प्रातिशास्त्र में कहा गया

पी-एच.डी. (संस्कृत)

है कि अनुस्वार व्यञ्जन भी है और स्वर भी – ''अनुस्वारं व्यञ्जनं का स्वरो वा।''[6] अनुस्वार कुछ स्वर के गुणों को धारण करता है, तो कुछ व्यञ्जन के गुणों को जैसे–अनुस्वार का ह्रस्व, दीर्घ व प्लुत होना तथा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित होना ये स्वर के गुण हैं तथा संयोग को प्राप्त होना यह व्यञ्जन का गुण है, इसलिए अनुस्वार स्वर भी और व्यञ्जन भी है। अनुस्वार न तो केवल स्वर है और न केवल व्यञ्जन।

व्यञ्जन संज्ञा : ऋक्प्रातिशाख्य में कहा गया है कि स्वर और अनुस्वार के अतिरिक्त सभी शेष वर्णों को व्यंजन कहते हैं – ''सर्वः शेषोव्यञ्जनान्येव।''[7] ऋक्प्रातिशाख्य में स्वीकृत व्यञ्जन इस प्रकार हैं – क, ख, ग, घ, ङ। च, छ, ज, झ, ञ। ट, ठ, ड, ढ, ण। त, थ, द, ध, न। प, फ, ब, भ, म। य, र, ल, व। ह, भा, श, स। अः, क, प।

व्यञ्जन अर्थविशेष के बोधक होते हैं। शब्दों के अर्थ व्यञ्जन के बदलने से भी बदल जाते हैं। जैसे– यूप, कूप, धूप आदि व्यञ्जनों के बदलने से अर्थ बदल गए। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य[8] के वैदिकाभरण नामक भाष्य में व्यञ्जन शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है। ''परेण स्वरेण व्यञ्ज्यत इति व्यञ्जनम्।'' अर्थात् स्वर की सहायता से व्यक्त अर्थात् उच्चारित होने के कारण इन्हें व्यञ्जन कहा जाता है।

स्पर्श–संज्ञा : ''तेषामाद्यास्पर्शाः''[9] अर्थात् उन व्यञ्जनों में आद्यवर्ण स्पर्श नाम से अभिहित किए जाते हैं। ऋक् प्रातिशाख्य में स्पष्टतः इनकी संख्या पच्चीस मानी गई है– ''पञ्च ते पञ्चवर्गाः''[10] उन स्पर्श वर्णों के पान स्पर्श वर्णों के पाँच–पाँच वर्णों के पाँच वर्ण होते हैं। लघु सिद्धान्त कौमुदी में इसी तथ्य को ''कादयो मावसानाः स्पर्शाः।''[11] कहा गया है।

स्पर्श वर्णों का उच्चारण करते समय मुख के दो उच्चारण अवयव एक दूसरे का स्पर्श करके वायु को रोकते हैं और फिर एक दूसरे से अलग होकर वायु को बाहर जाने देते हैं। दो उच्चारणावयकों के स्पर्श होने के कारण इनको स्पर्श व्यञ्जन कहते हैं। उच्चारणावयवों के स्पर्श से वायु क्षणभर के लिए रुक जाती है, जितने समय इन उच्चारणावयकों का स्पर्श रहता है, तब तक कोई ध्वनि नहीं होती। ज्यों ही स्पर्श की समाप्ति होती है, त्यों ही वायु बाहर निकलती है, अतः इन्हें स्फोटक कहते हैं। क वर्ग, च वर्ग, अ वर्ग, त वर्ग तथा प वर्ग ये पाँच वर्ग पच्चीसों वर्णों से होते हैं।

अन्तःस्थ–संज्ञा : ''चतस्रोऽन्तस्थास्ततः''[12] अर्थात् उन स्पर्श वर्णों के बाद चार वर्ण अन्तःस्था कहे जाते हैं। 'अन्तःस्था' शब्द 'अन्तः' पूर्वक 'स्था' धातु से 'क्विप' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न किया गया है। य, र, ल, व – इन चार वर्णों को हि अन्तःस्था कहते हैं। 'अन्तःस्था' शब्द के विषय में विद्वानों की अनेक धारणाएँः

(1) वर्णमाला में स्पर्श व ऊष्म वर्णों के मध्यम में (अन्तःस्थ) स्थित होने के कारण इन्हें अन्तःस्था कहते हैं।

(2) आभ्यन्तर प्रयत्न की दृष्टि से ये वर्ण (य, व, र, ल) स्वर और व्यञ्जन के मध्य में स्थित हैं, इसलिए इन्हें अन्तःस्था कहते हैं।

(3) य, व, र, ल – इन अन्तःस्था वर्णों की यह विशेषता है कि इनमें से प्रत्येक क्रमशः अपने समान स्थान वाले स्वर से सम्बन्धित होता है। स्वर व व्यञ्जन इन दोनों के गुणों से युक्त होने के कारण इन वर्णों को अन्तःस्था का अर्ध्य स्वर भी कहा जाता है, लघु सिद्धान्त कौमुदी में 'यणोऽन्तःस्था'[13] कहकर स्पष्ट किया गया है।

ऊष्म–संज्ञा : ''उत्तरेष्टा ऊष्माणः''[14] अर्थात् अन्तःस्था के बाद वाले आठ वर्ण 'ऊष्मन' कहलाते हैं। स्पर्श वर्णों के उच्चारण के समय क्षणभर के लिए मुख में वायु का मार्ग पूर्णतया अवरूद्ध हो जाता है, किन्तु 'ऊष्म' वर्णों के उच्चारण के समय वायुमार्ग पूर्णावरूद्ध न होकर थोड़ा खुला रहता है, जिससे वायु उस सकरे मार्ग से दोनों ओर संघर्षण करती हुई बलपूर्वक बाहर निकलती है, इसी कारण ऊष्म वर्णों को संघर्षी भी कहा जाता है। ऊष्मन का शाब्दिक अर्थ गर्म वायु या भाप भी है। ऊष्म वर्णों का उच्चारण करते समय मुख से निकलने वाली गर्म वायु की प्रधानता रहती है, इसीलिए इसे 'ऊष्मन' कहते हैं। ऋ0प्रा0 1/10 में भाष्य में उव्वर ने भी इसी तथ्य को स्पष्ट रूप से कहा है।[15] आठ ऊष्मन वर्ण इस प्रकार हैं – ह, भा, श, स, अः, क, प, अं।[16]

अघोष–संज्ञा : 'अन्त्याःसप्त तेषाम घोषाः'[17] अर्थात् उन ऊष्मवर्णों के अन्तिम सात वर्ण अघोष हैं। जैसे– श, ष, स, अः, क, प और अं। इसी प्रकरण में सूत्रकार ने कुछ और वर्णों की अघोष संज्ञा बतलाई है – ''वर्गे वर्गे च प्रथमावघोषौ'' अर्थात् प्रत्येक वर्ग में प्रथम दो वर्ण भी 'अघोष' कहलाते हैं। यथा–क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ।

अघोष वर्णों के उच्चारण में स्वरतन्त्रियाँ एक–दूसरे से दूर रहती हैं, जिसके परिणाम स्वरूप स्वरतन्त्रियों से वायु का घर्षण नहीं होता और इसलिए उनमें कम्पन नहीं होता। वैदिक ध्वनि वैज्ञानिकों के कट्टर आलोचक विद्वान निटनी भी प्राचीन भारतीय ध्वनि वैज्ञानिकों की इस महत्त्वपूर्ण देन की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। उनका कहना है कि प्रातिशाख्य यहाँ 'अघोष' तथा 'सघोष' वर्णों के अन्तर को पूर्ण यथार्थता के साथ प्रस्तुत करता है और वह अन्तर दो श्रेणियों में फेफड़े तथा कण्ठ के द्वारा मुखावयवों को प्रदान किए गए द्रव्य के विभिन्न स्वरूप में निहित है। एक श्रेणी (अघोश) में केवल 'श्वास' सामान्य 'नाद' रहित वायु और दूसरी श्रेणी (स घोष) में कण्ठ से जाती हुई वायु स्वर तन्त्रियों द्वारा 'घोष' युक्त करके 'नाद' बना देती है।[18]

सोष्म संज्ञा : ''युग्मौ सोष्माणौ''[19] अर्थात् प्रत्येक वर्ग में 'सम' वर्ण 'सोष्मन' कहलाते हैं। उदाहरणार्थ – ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ।

ऋक्प्रातिशाख्य में 'अल्प' प्राण और महाप्राण संज्ञाओं का उल्लेख नहीं किया गया है और न इस दृष्टि से व्यञ्जनों का विभाजन किया गया है। इस प्रसग में बतलाया गया है कि प्रत्येक वर्ग के सम वर्ण 'सोष्मन्' कहे जाते हैं। इन वर्णों में द्वितीय वर्णों का मूल कारण 'वास' है और ये 'अघोष' है तथा चतुर्थ वर्णों का मूल कारण 'वास' और 'नाद' दोनों है और ये सघोष हैं।

'सोष्मन्' का शाब्दिक अर्थ है 'ऊष्मन्' के सहित ''ऊष्मावायुः तेन सह वर्तन्त इति सोष्माणः''[20] ऊष्मन का अर्थ है वायु, उस वायु से उच्चारित होते हैं, इसलिए सोष्मन कहलाते हैं, इन वर्णों के उच्चारण में वायु का आधिक्य होता है। 'सोष्म' वर्ण 'ह' युक्त होते हैं। यथा– ख = क + ह (K + H), घ = ग + ह (G + H) हकार शुद्ध प्राण ध्वनि है।

अनुनासिक–संज्ञा : ''अनुनासिकोऽन्त्यः''[21] अर्थात् प्रत्येक वर्ग का अन्तिम वर्ण अनुनासिक होता है। उदाहरणार्थ– ङ, ञ, ण, न और म। ऋक्प्रातिशाख्य के एक स्थल में अनुनासिक के लिए 'रक्त' संज्ञा का भी अभिधान किया गया है।

''रक्तोऽलनुनासिकः''[22] इसके अतिरिक्त आठ स्थल अन्य हैं, जिनमें अनुनासिक शब्द का प्रयोग वर्गों के अन्तिम वर्णों के लिए किया गया है।[23] ऋक्प्रातिशाख्य के अन्य पाँच स्थलों में अनुनासिक शब्द का प्रयोग स्वर वर्ण के विशेषण के रूप में किया गया है।[24] एक स्थल में अनुनासिक शब्द का प्रयोग 'अन्तःस्था' वर्ण के विशेषण रूप में किया गया है।[25] उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त एक अन्य स्थल में उच्चारण दोष के प्रसंग में अनुनासिक शब्द का प्रयोग किया गया है।[26]

वास्तव में अनुनासिक का अर्थ है मुख और नासिका से उच्चारण होने वाला वर्ण 'रक्तो वचनों मुखनासिकाभ्याम्'[27] वर्गों के अन्तिम वर्ण मुख व नासिका से उच्चारित होने के कारण अनुनासिक कहे जाते हैं, अन्तःस्था वर्ण जब मुख व नासिका दोनों से उच्चारित किए जाते हैं। वे अन्तःस्था अनुनासिक कहे जाते हैं। जैसे – यँ, वँ, लँ। स्वरों का उच्चारण जब मुख व नासिका से किया जाता है तो वे 'अनुनासिक स्वर' कहे जाते हैं। यथा – अँ, आँ, इँ, ईं आदि।

प्राचीन भारतीय ध्वनि वेत्ताओं में अनुस्वार के विषय में बड़ा मतभेद है। ऋक्प्रातिशाख्य के प्रारम्भिक श्लोकों[28] में अनुस्वार की गणना व्यञ्जनों में की गयी है। विष्णु मित्र ने अपनी वृत्ति में अं के लिए अनुस्वार शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु उसी स्थान पर अ ंके लिए अनुनासिक शब्द का प्रयोग किया है।[29] इससे ज्ञात होता है कि विष्णु मित्र चतुरध्यायिका की भाँति अनुस्वार और अनुनासिक में भेद नहीं मानते।

ऋक्प्रातिशाख्य में अनुस्वार का प्रयोग उन्नीस सूत्रों में किया गया है। उनमें चार सूत्रों[30] में अनुस्वार का प्रयोग व्यञ्जन के साथ किया गया है। दो सूत्रों[31] में विसर्जनीय के साथ प्रयोग किया गया है। दो सूत्रों में[32] स्वर के साथ प्रयोग किया गया है। एक सूत्र[33] में स्वर तथा ऊश्मन् के साथ विभिन्न प्रसंगों में किया गया है। पाँच सूत्रों[34] में स्वतन्त्र पदों में अनुस्वार का विधान किया गया है।

छः सूत्रों[35] में अनुस्वार के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है।

ह्रस्व संज्ञा : ''ओजा ह्रस्वाः सप्तमान्ता स्वराणाम्''[36] अर्थात् स्वरों में प्रथम सात तक विशम वर्ण ह्रस्व होते हैं। जैसे–अ, ऋ, इ, उ। ह्रस्व एक मात्रिक होता है। इसी भाव को अष्टाध्यायी में भी 'ऊकालोऽज्झ्रस्व दीर्घः प्लुतः''[37] से अभिहित किया गया है।

दीर्घ संज्ञा : ''अन्ये दीर्घाः''[38] अर्थात् ह्रस्व से अन्य स्वर वर्ण दीर्घ है। उदाहरणार्थ– आ, ॠ, ई, ऊ, ए, ओ, ऐ, औ दीर्घ द्विमात्रिक होते हैं।

अक्षर संज्ञा : ''उभये त्वक्षराणि''[39] अर्थात् दोनों (ह्रस्व और दीर्घ) अक्षर कहलाते हैं। 'अक्षर' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। प्रस्तुत प्रसंग में अक्षर शब्द का प्रयोग (Syllable) अर्थ में किया जाता है। वर्तमान समय में अक्षर की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं। इस विषय में कहा जा सकता है कि उच्चारण की दृष्टि से एक या अधिक वर्णों से निष्पन्न एक ऐसी इकाई अक्षर है, जिसका उच्चारण वायु के एक झटके से होता है।

ऋक्प्रातिशाख्य 1/19 में अक्षर संज्ञा का विधान करने के पश्चात् एक स्थल[40] में कहा गया है कि व्यञ्जन सहित अथवा अनुस्वार सहित अथवा शुद्ध भी स्वर वर्ण अक्षर संज्ञक होता है। इससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि अकेले स्वर व्यञ्जन तथा अनुस्वार के साथ मिलकर अक्षर बनता है बिना स्वर के व्यञ्जन या अनुस्वार 'अक्षर' नहीं बन सकता। व्यञ्जन और अनुस्वार स्वर के अग बनकर ही 'अक्षर' संज्ञा को प्राप्त होते हैं। ''अनुस्वारों व्यञ्जनं = चाक्षराग्म्।''[41]

ऋक् प्राप्तिशाख्य के अठारहवें पटल में इस विषय का बड़ा विस्तृत वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में अक्षर को चार प्रकार का बतलाया गया है। गुरु, गुरुतर, लघु, लघुतर। दीर्घ अक्षर गुरु संज्ञक होता है।

'गुर्वक्षरम्'[42] 'गुरुदीर्घम्'[43] व्यञ्जन के सहित 'दीर्घ' 'अक्षर' 'गुरुतर' होता है। ''गरीयस्तुयदि स व्यञ्जनं भवेत्''[44] ह्रस्व 'अक्षर' लघु होता है। यदि उसके बाद संयुक्त वर्ण अथवा अनुस्वार न हो ''लघुह्रस्वं च चेत्संयोग उत्तरः''[45] 'अनुसवर च'[46] व्यञ्जन सहित 'ह्रस्व' अक्षर 'लघु' होता है। 'लघुसव्यञ्जनं ह्रस्वम्'[47] व्यञ्जन रहित ह्रस्व 'अक्षर' लघुतर होता है। 'लघीयोव्यञ्जनादृते।'[48]

गुरु संज्ञा : ''गुरुणि दीर्घाणि''[49] अर्थात् दीर्घ स्वर गुरु होते हैं। यथा–आ, ॠ, ई, ऊ, ए, ओ, ऐ, औ, ई 3। यहाँ प्लुत स्वर का भी गुरु संज्ञा के अन्तर्गत सन्निवेश किया गया है। ''तथोतरेषां संयोगानुस्वारपराणि यानि''[50] अर्थात् उसी प्रकार दूसरों अर्थात् ह्रस्व स्वरों में जो 'संयोग पर'[51] व 'अनुस्वार'[52] पर हैं, वे गुरु संज्ञक होते हैं। उदाहरणार्थ – ''प्र प्र वस्त्रिष्टुमम''[53] तथा ''वसुं सूनुं सहसोजातवेदसम''[54]।

अनुस्वार और व्यञ्जन के पूर्वाग और पराग भाव या अग संज्ञा : ''अनुस्वारों व्यञ्जनं चाक्षराग्म्''[55] अर्थात् अनुस्वार और व्यञ्जन अक्षर अर्थात् स्वर वर्ण के अंग होते हैं, जो व्यञ्जन होते हैं, जो दो स्वर वर्णों के मध्य विद्यमान नहीं हैं। वे यहाँ उदाहरण हैं। जैसे–प्र–पकार और रेफ 'अ' कार के अंग है। 'चक्रयत्' ककार रेफ और अनुस्वार अकार के अंग है। अनुस्वार व्यञ्जन नहीं है। इसलिए अनुस्वार का सूत्र में ग्रहण अलग से किया गया है।

प्रातिशाख्य ग्रन्थों में अक्षर को ही भाषा का मूल माना गया है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में एक सूत्र के भाष्य में[56] अक्षर को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, ''न क्षरन्तीत्यक्षराणि क्षरण मन्यांग तथा चलनम्'' इस परिभाषा से यह सिद्ध होता है कि अक्षर वह है, जो किसी का अंग न हो उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के ही गुण हैं, व्यञ्जनों के नहीं अक्षर न होने के कारण व्यञ्जन और अनुस्वारों को अक्षरों का अंग बनना पड़ता है, इस अक्षर विभाजन के नियमों का प्रतिपादन प्रायः सभी प्रातिशाख्यों में विहित है, यही अंग संज्ञा है।

दो स्वर वर्णों के मध्य में स्थित व्यञ्जन बाद वाले स्वर वर्ण के अंग होते हैं। ''स्वरान्तरे व्यञ्जनान्युत्तरस्य''[57] जैसे ''गायन्ति त्वा''[58] इस स्थल में अकार के स्वरित होने से यकार भी स्वरित के समान सुना जाता है।

'अनुस्वार' और 'विसर्जनी' पूर्ववर्ती स्वर वर्ण के अंग होते हैं। ''पूर्वस्यानुस्वार विसर्जनीयौ''[59] अनुस्वार का उदाहरण ''वसुं सूनुं सहसः''[60] वसुं व सूनुं के अनुस्वार दोनों उकार के अंग हैं। इसी प्रकार ''नृँः पात्रम्''[61] इस विसर्जनीय के उदाहरण ऋकार का अंग है।

संयोग का प्रथम वर्ण दो स्वर वर्णों के मध्य में होने पर विकल्प से पूर्ववर्ती स्वर वर्ण का अथवा परवर्ती स्वर वर्ण का अंग होता है। ''संयोगादिर्वा''[62] यथा 'अग्निमीळे''[63] इस उदाहरण में दो गकार और नकार का संयोग है, उनमें द्वित्व क्रम से उत्पन्न प्रथम गकार पूर्व स्वर वर्ण का अंग है और उस पूर्व स्वर वर्ण के अनुदात्त होने से प्रथम गकार अनुदात्तवत् श्रूयमाण है। संयोग का प्रथम (द्वितीय गकार) यम होकर यातो पूर्ववर्ती अनुदात्त स्वर वर्ण का अंग होता है। अथवा परवर्ती उदात्त स्वर वर्ण का अंग होता है और जब संयोग के दूसरे व्यञ्जन का द्वित्व हो, तो दो व्यञ्जन या तो पूर्ववर्ती स्वरवर्ण के अंग होते हैं या परवर्ती स्वरवर्ण के अंग होते हैं। 'च परक्रमे द्वे'[64] उदाहरणार्थ – 'आर्त्त्नी इमे''[65] इस उदाहरण में रेफ दो तकारों व नकार का संयोग हैं, उनमें से 'स्वरभक्ति' पूर्ववर्ती रेफ व लकार से सम्बद्ध होती है और पूर्ववर्ती अक्षर स्वरवर्ण का अंग होगा। पूर्ववर्ती स्वर वर्ण के उदात्त होने पर स्वरभक्ति सहित रेफ भी उदात्त के समान सुना जाएगा।

संदर्भ :

(1) ऋ०प्रा० 1/1. **(2)** *''त त चत्वारि संध्यक्षराष्युत्तराणि'' ऋ०प्र० 1/2.* **(3)** *ऋ०प्रा० 1/3.* **(4)** *ऋ०प्रा० पृ० 44 (भाष्य).* **(5)** *तै०प्रा० 1/5.* **(6)** *ऋ०प्रा० 1/5.* **(7)** *ऋ०प्र० 1/6.* **(8)** *तै०प्रा० 1/6.* **(9)** *ऋ०प्रा० 1/7.* **(10)** *ऋ०प्रा० 1/8.* **(11)** *ल०सि०कौ० (संज्ञा प्रकरण).* **(12)** *ऋ०प्रा० 1/9.* **(13)** *ल०सि०कौ० (संज्ञा प्रकरण).* **(14)** *ऋ०प्रा० 1/10.* **(15)** *ऋ०प्रा० (एक परिशीलन), प्रो० वीरेन्द्र कुमार वर्मा, पृ० 14.* **(16)** *ऋ०प्रा० 1/11.* **(17)** *ऋ०प्रा० 1/12.* **(18)** *Whitney on C.A. 1, 13.* **(19)** *ऋ०प्रा० 1/13.* **(21)** *ऋ०प्रा० 1/13 का उव्वट भाष्य.* **(21)** *ऋ०प्रा० 1/14.* **(22)** *ऋ०प्रा० 1/36.* **(23)** *ऋ०प्रा० 5/26, 6/29–41, 9/10, 11/50–51, 13/15–37.* **(24)** *ऋ०प्रा० 1/63, 2/67, 4/80, 10/10, 14/13.* **(25)** *ऋ०प्रा० 4/7.* **(26)** *ऋ०प्रा० 14/9.* **(27)** *ऋ०प्रा० 13/20.* **(28)** *वर्गद्वय 10.* **(29)** *अकाराद्यनुनासिकान्तः ऋ०प्रा० (एक परिशीलन), प्रो० वीरेन्द्र कुमार वर्मा, पृ० 51.* **(30)** *ऋ०प्रा० 1/21–22, 18/32–39.* **(31)** *ऋ०प्रा० 1/24, 18/34.* **(32)** *ऋ०प्रा० 6/1, 13/41.* **(33)** *ऋ०प्रा० 13/11.* **(34)** *ऋ०प्रा० 4/15, 13/22, 28, 3614/54.* **(35)** *ऋ०प्रा० 1/5, 48, 13/15, 32, 33, 37.* **(36)** *ऋ०प्रा० 1/17.* **(37)** *अष्टाध्यायी 1/2/27.* **(38)** *ऋ०प्रा० 1/18.* **(39)** *ऋ०प्रा० 1/19.* **(40)** *ऋ०प्रा० 18/32.* **(41)** *ऋ०प्रा० 1/22.* **(42)** *ऋ०प्रा० 18/37.* **(43)** *ऋ०प्रा० 18/41.* **(44)** *ऋ०प्रा० 18/42.* **(45)** *ऋ०प्रा० 18/38.* **(46)** *ऋ०प्रा० 18/39.* **(47)** *ऋ०प्रा० 18/43.* **(48)** *ऋ०प्रा० 18/44.* **(49)** *ऋ०प्रा० 1/20.* **(50)** *ऋ०प्रा० 1/21.* **(51)** *'संयोग' है परे जिनके।* **(52)** *'अनुस्वार' है परे जिनके।* **(53)** *ऋ०वे० 8/69/1.* **(54)** *ऋ०वे० 1/127/11.* **(55)** *ऋ०प्रा० 1/22.* **(56)** *तै०प्रा० 1/2.***(57)** *ऋ०प्रा० 1/23.* **(58)** *ऋ०वे 1/10/1.* **(59)** *ऋ०प्रा० 1/24.* **(60)** *ऋ०वे० 1/127/1.* **(61)** *ऋ०वे० 1/121/1.* **(62)** *ऋ०प्रा० 1/25.* **(63)** *ऋ०वे० 1/1/1.* **(64)** *ऋ०प्रा० 1/26.* **(65)** *ऋ०वे० 6/75/4.*

संकेत सूची :

(1) ऋ०प्रा० – ऋक् प्रातिशाख्य।
(2) *तै०प्रा० – तैत्तिरीय प्रातिशाख्य।*
(3) *ल०स०कौ० – लघु सिद्धान्त कौमुदी।*
(4) *व०द्व– वर्गद्वय।* **(5)** *अष्टा० – अष्टाध्यायी।*
(6) *ऋ०वे० – ऋग्वेद।*

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

(1) आचार्य शौनक (अनुवादक एवं परिष्कर्त्ता : डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा) : ऋग्वेद प्रातिशाख्य, चौखम्भा सं० प्रतिष्ठान, दिल्ली, ISBN : 81- 7084 012 - 0

(2) *वर्मा, डॉ० वीरेन्द्रकुमार (सम्पादक) : ऋग्वेद भाष्य भूमिका।*

(3) *जिटनी (सम्पादक) : त्रिभाष्य रत्न।*

(4) *शर्मा, वी० वेंकटराम (सम्पादक)(1930) : तैत्तिरीय संहिता, मद्रास वि०वि०।*

(5) *प्रज्ञा देवी (1968) : अष्टाध्यायी, प्यारेलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर।*

(6) *शास्त्री, श्री धरानन्द (1977) : लघु सिद्धान्त कौमुदी, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।*

❁❁

UGC - APPROVED - JOURNAL

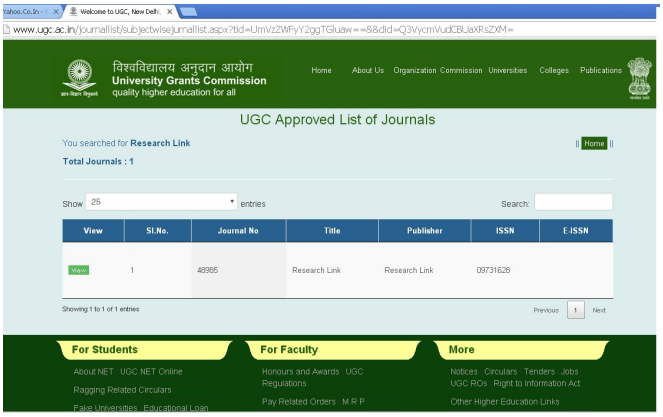

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Sanskrit Literature
Research Link - 162, Vol - XVI (7), September - 2017, Page No. 144-146
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यसर्जना

भारतमात्रं परिचाययति। मेघदूतं पठित्वा केवलं रामगिरेरामभ्य अलकां यावद् भारतस्य परिचयः समवाप्तुं शक्यते परन्तु राधावल्लभत्रिपाठी प्रणीतं 'धरित्रीदर्शनं' पठित्वाऽभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रणीतं 'मृगाङ्कदूतम्' पठित्वा वा शर्मण्यदेशस्य वृहत्तरभारताङ्गभूतस्य बालीद्वीपस्यापि परिचयः सविस्तरं ज्ञायते। एवं हि अर्वाचीनसंस्कृतकाव्यसर्जनाया मानदण्डो व्यायतः प्रतिहपाद्यक्षेत्रं विस्तृततरं, प्रतिपाद्यविषयाणां संख्याऽपिभूयसी। आधुनिक गीतवाङ्गमये इदम्यप्रथमतया परमाणु विस्फोटानां तारकायुद्धविभीषिकाणां पाश्चायसंस्कृतेरकाण्डताण्डवानां भारतीय जीवनाचारपद्ध-तेरुत्तरोत्तरहासाणां च यादृशी चर्चा समवाप्यते तस्याः प्राचीनकाव्येषु आत्यन्तिकः अभावो परिलक्ष्यते।

शीतल चन्द्र शर्मा

संस्कृतसाहित्यं हि अनन्तपारम्। तस्य साकल्येनाध्यनमेकेनजनेन एकस्मिन् जन्मनि कर्तुं नैव पार्यते। विश्वस्य मंगलार्थं वेदवाणी संस्कृते एवाविर्भूता। निषाद विद्धाण्डजदर्शनोत्था आदिकवे वाल्मीकेः करूणा ''मानिषादेतिव्याजेनात्रैव प्रकटिता। देशस्य एकतामखण्डतां च संरक्षितुं मानवतां च पोषयितुं काले काले सहस्रशो हि काव्यनाटकाद्याः रचनाः संस्कृतभाषायां विरचिता विरच्यन्ते च। काव्यं कर्तुं विचारयितुं च ये जानन्ति तेषामत्र महती परंपरा। अस्यामेव परम्परायां साम्प्रतिकाः संस्कृतरचनाकाराः स्वयोगदानं कुर्वाणा देववाण्याः पुराणतारूण्यं प्रत्यग्रशोभां च सम्यक रण्यापन्तोऽस्मादृशां जनानां वन्दनीयतां यान्ति।

विगतभातकवर्षेषु गुणपरिमाणदृष्ट्या पुष्कलंसंस्कृत साहित्यमद्दृष्टिपथे समायातम्। तत्र नाटकानि, ध्वनिनाटकानि, महाकाव्यानि, खण्डकाव्यानि, पत्रकाव्यानि, गीतानि, मुक्तछन्दन्दोरचनाः, कथाः, उपन्यासाः, काव्यसंकलनानि, स्फूटरचना अन्या च तास्ता विधाः संस्कृतसाहित्यस्य कोशं समृद्धं कुर्वाणा अवलोक्यन्ते। अत्रान्तरे बह्वयो रचनाः प्रकाशिताः दूरदर्शनाकाशवाणीतः प्रसारिताः गोष्ठीषु पठिताः समीक्षागोष्ठीषु विचारिताः किञ्च नैकाः प्रकाशनस्य प्रतीक्षां कुर्वाणास्तिष्ठन्ति।

रचनात्मकसाहित्यम् – नाटकानि – नाटकानां दृशायमालोच्यकालः नैजां समृद्धि सूचयति। डॉ. रामकिशोर मिश्रस्य ''दैवयानी'' नाटिका श्रीवासुदेवआचार्यस्य मधुलिप्सा श्री भि. राजेन्द्रमिश्रस्य मेघदूतान्वितम् गीतनृत्यनाट्यम् अभिराज डॉ राजेन्द्रमिश्रस्य '' दिल्लीपरिवेशम्'' इत्येतादिका नाट्यकृतयः प्रकाशं गताः। डॉ. इच्छारामद्विवेदप्रणवस्य ''सत्प्रेरणा''। एतासु रचना– स्वाधिकांशानां प्रयोगा अपि सञ्जाताः। इमा नाट्यकृतयः पुरातनकथानकानि धारयन्त्योऽपि स्वयुगं नैवोपेक्षन्ते। अवश्यं ता वर्तमानयुगायायि कान्तासम्मिततयोपदेशं दातुं प्रयतन्ते। डॉ. गौरीनाथ मिश्र भास्करस्य ''गुरूदक्षिणा नाटकम्'' श्रीरामकृष्णशर्मणः ''नाट्यत्रयी'' यत्र शाकुन्तलकथा – कर्णवृतान्तादेर्नवीनदृशा प्रस्तुतिर्जाता।

डॉ वनेश्वरपाठक प्रणीता ''चाण्डालिका'' विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत चाण्डालिकायाः संस्कृतनाट्यरूपांतरं विद्यते। यस्यप्रथमं संस्करणं 1981 तमेशवीयेऽब्दे प्रकाशितमासीत्। डॉ. पाठकस्यैव ''विक्रान्तकर्णम'' कर्णस्यचरितमम्ब्य कृतं नाटकमस्ति। यस्य सन्देशोऽस्ति– 'जातिर्नैव हि पूज्यते सूमतिभिर्व्यक्तिः सदा पूज्यते'।

महाकाव्यानि – नैककाव्यर्तृभिः डॉ. सत्यव्रतशास्त्रिभिः 1989 एकोनाशीव्युत्तरैकोनविशंतितमेशवीयेऽब्दे गुरूपूर्णिमायां थाइलैण्डे प्रसिद्धस्य श्रीरामकीर्तिकथान कस्येदम्प्रथमतया प्रणीतं संस्कृतरूपान्तरणं सम्पूर्णतामानीतम्। थादूरामकथाश्रित्य प्रणीतमिदं संस्कृतमहाकाव्यं सदुक्तीनां निधानं वर्तते। स्थाने–स्थाने पूर्वकवीनां वाक्यांशाः कविवाचि पदं निदधते। इत्थं च वाल्मीकिकालिदासादीनां वचांसि पुनरूद्धृतानि काव्ये कामपि नूतनामेव विच्छित्तिं सन्दर्भगर्भकतां च पुष्पान्ति। दिङमात्रामुदाहृयते चिरात्प्रत्याभिज्ञातं स्वपितरं हनूमन्तं प्रति–

'अद्य क्रियाः कामदुधाः क्रतुनां सत्याशिषः सम्प्रति भूमिदेवाः।
चिराय यद्दर्शनमीप्सतं मे स एव साक्षात्पुरतो ममास्ति।।
ममेष्ट देवोऽसि पिता मम त्वं मनोरथानामतट प्रपातः।
त्वद्दर्शननैव कृती तथापि गुर्वत्र कार्यं प्रतिपादयामि।।[1]

डॉ. गोस्वामिबलभद्रप्रसादभाास्त्रिणः प्रकाशितं चतुर्दशसर्गात्मिकं दूतांजनेयम् नाम महाकाव्यं श्रीहनमतो दौत्यकर्माधारीकृत्य विरचितमस्ति। विविधवर्णनानि सूक्तिविधानम् वीराद्भुतरसयोजना, छन्दोविधानम् इत्येतसर्वमेव अत्र महाकाव्ये दृश्यम्। डॉ. हरिनारायणदीक्षितप्रणीतं ''भीष्मचरितं'' नाम महाकाव्यं विंशतिसर्गेषु पारम्परिक वृतैर्निबद्धमस्ति। अस्मिन् महाकाव्ये भीष्मस्य जीवनचरितं कविना निबद्धम्। महाकाव्यमिदं साहित्यअकादम्या पुरस्कृतम्। डॉ.

शिक्षकः भिलाई इस्पात संयंत्रम्, भिलाईनगरम्, दुर्ग (छत्तीसगढ़ः)

इन्द्रदेवद्विवेदिनः ''सुदामाचरितम्'' नाम महाकाव्यम् एकविंशतिर्सेषु सुदाम्म चरितं वर्णयति। श्रीकृष्णदत्तशर्मणा'' ''शिवचरितं'' नाम विंशतिसर्गात्मकं महाकाव्यं सद्य एव प्रकाशितं।

''मान्यामही'' तिनाम्नि प्रथमसर्गे कविर्देशे देशभक्तान् सुवीरान् कांक्षति–

सुरबरमुनिवद्या भारतीया धरित्री
जलधिजलतरंगै धौंतपादा पवित्रा
विविधफलसुधान्यैः सप्रदेशैः प्रपूर्णा
जनयतु जननी सा देशभक्तान् सुवीरान्। (2)

रेवाप्रसादद्विवेदप्रणीतं ''स्वराज्यसम्भवम्'' नाम महाकाव्यं भारतस्य स्वातन्त्र्यावात्तिं किञ्चतदुत्तरं देशस्य व्यवस्थां चित्रयति। अस्मिन् महाकाव्ये वर्तमानकेन्द्रीयशासनपर्यन्तंघटनाः काव्यात्मदृशा उपनिबद्धाः सन्ति। कविकेदारगंगाधरविष्णु ठेकेदाराभ्यां प्रणीतं ''महात्मायनम्'' महात्मागान्धिनो जीवनगाथां प्रस्तौति।

काव्यसंकलानि– आलोच्यकाले नैकेषां कवीनां काव्यसंकलान्यपि प्रकाशितानि यत्र पूर्वप्रकाशिताः किञ्चच प्रत्यग्रा रचनाः संकलिताः सन्ति। शिवशुकीयसीमासन्ध्यापाथेयशतक कर्तुः डॉ. रामकरणशर्मणः ''वीणा'' किञ्चच ''दीपिका'' इत्येते संकलने कवेः विशदमनुभवं विशालां च काव्यदृष्टिं पुरूस्कुरूतः। अत्र अन्योक्तयः स्तुतयः, प्रस्तुतयः, संस्तुतयः, प्रकृतिवर्णम्, प्रबोधनम्, हास्यव्यङ्ग्योक्तयः इदं सर्वमपि लब्धुं शक्यते। ''शिव त्वां वन्दे'' इत्येतत्स्तुतौ शिवं प्रति भक्तो भणति– प्रियास्ते नागेन्द्रा मम मनसि ते सन्ति बहवो।

विषं प्रेयः पेयं तदपि बहुशः सचिंतमिह।
दिधक्षुस्त्वं कामं तमपि भव पश्येह सशरं।
दुरन्ताशाभस्मावचय इह भाम्भो! सुनिहितः।। (3)

साहित्य अकादम्यां ''षोडशीति नाम्ना समकालिक संस्कृतकाव्यसंग्रहः प्रकाशितः अत्र राजेन्द्रमिश्र रसिकबिहारी जोशि श्रीभाष्यम् विजयसारथि

हर्षदेवमाधवकेशवचन्द्रदाशेति षोड्शकवीनां रचनाः संकलिताः सन्ति।

ओमप्रकाश ठाकुरस्य ''गीतामञ्जरी'' षट्त्रिंशद् गेयरचनां ''इन्द्रधनुः'' च पञ्चसप्तति गीतानां संकलनमस्ति। ई. पी. भरतपिषारटिना प्रणीतं ''नवरत्नम्'' नवखण्डेषु विभक्तमस्ति। डॉ. इच्छारामद्विवेदी ''प्रणवस्य'' ''गीतमन्दाकिनी'' तस्यइतः पूर्वं यत्र तत्र प्रकाशितानाम् गीतानां संकलनमस्ति यत्र भक्ति श्रृंगारपरकाणां गीतानां प्राधान्यं विद्यते। डॉ. उमादेशपाण्डे महाभाग स्व ''अर्चनम्'' नाम्नि स्फुटकाव्यानां संग्रहे स्वकर्मस्थलं वटोदरम्, गुर्जरभूमिं, भारतं च मनोयोगेन वर्णयति, ईश्वरं महापुरूष च वन्दते। रचनायामाद्यन्तं प्रसादगुणो व्यापतः। तद्यथा–

वर्षति मेघो मधुमधुरम्।
नृत्यति विद्युत् हसति धरित्री नभस्तलं सखि तिमिरमयम्।
सान्द्रं विपिनं स्तब्धा सरसी मुग्धं भाति रवि बिम्बम्।।(4)

श्रीशुकदेवशर्मा मुनिप्रणीतं ''मंगलानक्षत्रम्'' त्रिषष्टि कवितानां संकलनं विद्यते यत्र विविधयिषयेषु कविना रचना कृता। सुभाषितान्यपि बहूनी सन्ति। तद्यथा–

मातुस्तृषाऽपत्यसुमंगलाभाः स्वसुस्तृषा सोदर भावभावाः।
नेतुस्तृषा राष्ट्रसुखे विभागाः दातुस्तृषा याचक कामभाषाः।
हंसे तृषाथो पयसां विभागाः विज्ञेतृषा नूतन योग लाभः।
मेघे तृषा चातक वारिदानं गोपे तृषा गोकुलपालनं वा।
वैद्ये तृषा रोगिरूजो निवृत्तिः कृषे तृषा क्षेत्रः विकास वृत्तिः।
रवेस्तृषा लोकतमो विनाशः हरेस्तृषा भक्त हितेक्षणं च।
कवेस्तृषा काव्य–विपाक पाकः मुनेस्तृषा मोक्ष पदार्थलाभः।।(5)

राधावल्लभस्य लहरीदशकं, वसन्त निदाघ प्रावृड़ धरित्री दर्शन जनता रोटिका–नर्मदा मृत्तिकाद्यापि प्रस्थानेति दशलहरीणां संकलनमस्ति यत्र, पद्यानि प्रत्येकं शीर्षके रचितानि। कालिदास एण्ड मैक्समूलर इण्टरनेशनल संस्कृत सोसायटीति संस्थाया 'राष्ट्रियमैक्यम्' इतिभीर्षकं संकलनं प्रकाशितं यत्र नवकविनां रचनाः संकलिताः सन्ति। मुक्तच्छन्दो रचनासु विद्वन्मणेः केशवचन्द्रदासस्य ''ईशा'' हर्षदेवमाधवस्य अलकनन्दा, डॉ. प्रकाशपाण्डे कवेः ''विग्नदईमन्'' इत्येतदादिका रचनालोचन पथमवतरन्ति। नैकपत्रपत्रिकास्वपि एतादृशा रचना प्रकाशिता भवन्ति यत्र नवीनविषयैः साकं नूतना रचनापद्धतिः कविभिरंगीकृता वर्तते।

कथाः–आचार्य केशवशर्मशास्त्रिणाः ''सरिता'' विविध भावोद्– बोधिनीनां षोडशकथानां संग्रहोऽस्ति। डॉ. केशव चन्द्रदाशस्य ''महान् किञ्चच ''एकदा'' इति ग्रन्थद्वये 21 बालकथाः संकलिताः सन्ति। तस्यैव ''मधुनायम्'' 'विसर्ग' इत्युपन्यासद्वयमपि कथाकाव्यपरम्परां विस्तारयति। श्रीमधुरशास्त्रिणा श्रीजयप्रकाशभारती लिखिताः एकविंशति कथाः ''बालैकविंशतिः'' संस्कृतेऽनुदिताः। सचित्रा इमा कथा बालानां सुखबाधाय स्थूलाक्षरैः मुद्रापिताः सन्ति। सरल सरलानिवाक्यानि कथाः सुबोध्याः सम्पादयन्ति।।(6)

सुभाषित संग्रहा : सुभाषितसंग्रहाणां प्रथमं प्रकाशनं संस्कृतसाहित्यस्य कलेरवं पुष्णाति। महोपाध्यायललितप्रभ सागर सम्पादितः ''विश्वसंस्कृतसूक्तिकोशः त्रिषुखण्डेषु प्रकाशितोऽस्ति। श्रीलछमनसिंहअग्रवालस्य ''ऋतम्भरा'' तस्य पूर्वकृतिषु समागतानां सुभाषितानां संग्रहोऽस्ति।

हास्यव्यङ्ग्य रचना : राजेन्द्रमिश्रस्य ''वाणीघटमेलकम्'' डॉ. मधुसूदनमिश्रस्य ''श्वेतविप्लुतम्'' डॉ. प्रशस्यमिश्रशास्त्रिणः 'कोमलकण्टकावलि च' हास्यव्यङ्ग्यरचनाः सन्ति। डॉ. प्रशस्यमिश्रशास्त्रिणः हास्यव्यङ्ग्य रचनाः ''कोमकण्टकावलिः'' नवभागेषु राजनीति–दाम्पत्य–प्रेमिका–विद्यालय–न्यायालय आपण–माणवक– यात्रा–विप्रकीर्ण– विषयिण्यस्ताः दशा वर्णयति याः पठित्वा श्रुत्वा च पाठकः स्मेरमुखो भवत्येव।

साहित्यकोशा : 'प्रज्ञाभारती' डॉ. श्रीधरभास्कर वर्णेकरस्य '' संस्कृतवाङमयकोश'' स्य भागद्वये यत्र धर्मार्थकाममोक्षेति चतुर्षु विभागेषु संस्कृतस्य पारिभाषिकशब्दानां परिचयो दीयते। प्रसंगतः साहित्यशास्त्रनाट्यशास्त्रदिसम्बद्धा भाब्दा अप्यत्र विवेचिताः सन्ति। सुविदितमेव विदुषां यदितः पूर्वमस्य कोशस्य खण्डद्यं प्रकाशितमस्ति यत्र प्राचीनार्वाचीनसंस्कृतग्रन्थकाराणां विषये महत्वपूर्णा सामग्री संकलितास्ति। डॉ. सत्यपालनांरगो महाकाव्यपादकोशं कालिदासवाङमयं च पूरयितुं यतते।।(7)

खण्डकाव्यानि शतकाव्यानि च–

खण्डकाव्यानां संख्या भूयसी परिलक्ष्यते आचार्य सम्पूर्णदतमिश्रप्रणीतं श्री विभवरञजारख्यं काव्यं , हर्षदेवमाधवप्रणीतं मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति, डॉ. केशवरामशर्म प्रणीतः अभिनवकविताञजलिः, सिद्धकवि श्रीसदानन्दडबराल प्रणीतो रासविलासः कीर्तित्रया– धर्मकीर्ति – रत्नकीर्ति – कल्याणकीर्ति

रचनासमुच्चयो नन्दनवनकल्पतरूः, राजेन्द्रमिश्रविरचितं संस्कृततशतकम्, अरण्यानी च, डॉ. हर्षदेवमाधवप्रणीतम् मृत्युशतकम्, डॉ. कुटुम्बशास्त्री प्रणीत वनमालारख्यं स्त्रोत्रकाव्यम्, डॉ. आर. श्रीहरिप्रणीतमातृगीतम् प्रकाशितं जातम्। श्रीरोदचन्द्रदाशस्य ''तारूण्यशतकम्'' तारूण्यसम्बन्धिनो विषयानवलम्ब्य रचिनातां श्रृंगारसप्रधानानां संकलमस्ति। ''यौवनदेवता'' मधिकृव्य कविर्भणति

''बालानां नवजीवनोत्सुकयुतामुन्मादिनी चन्द्रिका।
कान्ता कोमलकान्तिकौतुककला– मञजूषिकोद्याटिका।
योषाजीवनदीपिका कुलवधू सम्भोगसम्वर्धिका।
जीयाद् यौवनदेवता तनुभृतामानन्दसम्वाहिका।।[8]

अद्यत्वे यादृशी राजनीतिर्देशे प्रचलति सा नास्ति कस्यापि दृष्टिगोचरा। अस्माभिरेव स्वदृशा ते राजनेतारो दृष्टा ये चारित्र्यवन्त आसन्, यै चदेश सेवार्थं सर्वस्वं त्यक्तम्, अस्माभिरेवैतादृशा अपि राजनेतारोऽद्यत्वेऽवलोक्यन्ते ये देशहितापेक्षया स्वहितमेव कांक्षन्ति ये जनान् प्रत्यहं योधयन्ति , ये पुरा दुर्भावनादीप्तिं कुर्वन्ति तदनु च सद्भावनायात्रा कृत्वा आगामिनी निर्वाचिने तैस्तैरूपायैविजयं लब्धुमेव सतृष्णवास्तिष्ठन्ति, देशसेवाया व्रतं गृहीत्वा ये निर्वाचनागंणेऽवतरन्ति पुनश्च लब्धे मनोरथे यादृच्छिकमाचरन्ति, पादयोः प्राणिपत्य घोणाघर्षणं कृत्वा मतं याचन्ते किन्तु मतदार्तुमतस्यादरं न कुर्वन्ति, शासनासन्दिकाराधनैकव्रतानामेतादृशां युगपुरूषाणां विषयेऽपि अभिधया, लक्षणया, व्यजनाया वा संस्कृतरचना कृद्भिभार्वा व्यक्ताः। डॉ. दीपकघोषस्य ''राजनीतिलीलाशताधिकं'' चलमानराजनीतिमवलम्ब्य विरचितं सोल्लुण्ठकाव्यं वर्तते। इदं काव्यं खण्डकाव्यस्य शतककाव्यस्य वा कौटौ स्थापनीयमस्ति। कविना एकादशोत्तरैकशतपद्येषु राजनीतिं प्रति प्रणति पुरस्सरं स्वभावा विचाराश्च निवेदिताः –

भो राजनीति प्रणमामि तुभ्यं पुनः पुनस्ते पदयोःप्रणामः।
अनन्तकीर्तीरिमिताश्च शक्तीः शक्नोमि मातुं न तव क्षमस्व।।
विचित्रवर्णा न विशेषवर्णा विचित्रमार्गा न विशेषमार्गा।
विचित्रचित्ता न हि दुष्टचित्ता शो राजनीते भवती विचित्रा।।[9]

पत्रपत्रिकासु प्रकाशिताः साहित्यिक रचना : भारतेऽद्यत्वे नैकाः संस्कृतपत्रिकाः प्रकाश्यन्ते यासु सुधर्मा, नवप्रभातम्, संस्कृतभवितव्यम्, गाण्डीवम्, युगगतिः, शारदा, संस्कृतसाकेतः, हितसाधिका, सूर्योदयः, भारती, पारिजातम्, गीर्वाणसुधा, श्रीः, कालिदासः, सारस्वतीरषुषमा, दूर्वा, सागरिका, प्रियम्बदा, संस्कृतमन्जरी, संस्कृतश्रीः, संगमनी, प्रियवाक् इत्याद्याः, पत्रिकाः प्रामुरख्यं भजन्ते। एतासु पत्रपत्रिकासु विविधविषयेषु संस्कृतसाहित्यं प्रकाश्यते। अद्यत्वेऽपि धारावाहिकरूपेण विविधपत्रिकासुश्वृहत्काया रचनाः प्रकाश्यन्ते।

समीक्षाग्रन्था : अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यसमीक्षा ग्रन्था अप्यनेके प्रकाशिता। तत्र सर्वोत्तमग्रंथो वर्तते राधावल्लभ प्रणीतः संस्कृतसाहित्य–बींसवीं शताब्दी। अस्मिन् ग्रंन्थे साम्प्रतिकसंस्कृतवाङगमययत्र समीक्षितं तिष्ठति।

"Past Independence champu award wining sanskrita works since independence."

इत्यभिधेयं समीक्षाग्रन्थं डॉ. एस.रंगनाथेन प्रणीतम्। प्रथमरचानायां सोमनाथनास्त्रि – गोविन्द भट्ट– कृष्णोजोयिस– पंचमुखी राघवेन्द्राचार्य– गलगलि पण्ठरीनाथाचार्य कनरादिविट्ठलो पाध्याय–अभिराजेन्द्रअरैयर श्रीरामशर्मणां चम्पूकृतयः साहित्योत्कर्षदृष्ट्या समालोचिता वर्तन्ते। द्वितीयग्रंथे साहित्यअकादमीवाचस्पतिदयावती सम्मानभाजां कासाञचकृनकृतीनां बृहती समीक्षा डॉ. रंगनाथेन विहिता। लखनऊ विश्वविद्यालयो प्राध्यापको डॉ. ओमप्रकाशशास्त्री संस्कृतभाषया विंशतिशताब्दिकं संस्कृतगद्यमित्यधिकं समीक्षात्मकं ग्रंथमेकं व्यरचयत्। पञचभिर्विभागैः संवलितेऽस्मिन् ग्रन्थे समीक्षको विंशततब्दैः प्रणीतानां 145 उपन्यासानां 48 कथा संकलनानां, 20 समीक्षाग्रंथानाश्च तालिकां रचनासत्रक्रमेण प्रस्तौति।।[10]

अनेन संक्षिप्तसर्वेक्षणेनदं स्पष्टीभवति यत्संस्कृतसाहित्यस्य शोधसमीक्षा रचनाधारा चाद्यापि सदानीरे स्तः। अस्माकं प्राचीनसाहित्यं कालजयि वर्तते किन्तु साम्प्रतिकं संस्कृत साहित्यमपि स्वीयं महत्तव दधाति। अर्वाचीनसंस्कृतं नास्ति प्राचीनसंस्कृतस्य परिपन्थि किञ्चिद्वस्तु, इदं हि तस्याविभाज्यमंगमस्ति अस्यामेव विंशशताब्द्याः उत्तरार्धे रचितं संस्कृतसाहित्यं देशस्य स्वातन्त्रयावाप्तौ हर्षं, देशविभाजने पीड़ां विकासकार्ये प्रीतिं, कुत्सितराजनीतौ क्षोभं, दीनहीनानां सेवार्थं प्रेरणां,स्वातन्त्रयवीरान् प्रति कृतज्ञतां, देशसेवाकान् प्रति आदरभावं, देशद्रोहिणः प्रति घृणाभावं, भारतस्य विश्वस्य च मंगलकामनां निदधत् संस्कृतसाहित्ये कामपि अदृष्टपूर्वा विच्छितिं संयोजयति।

प्राचीन संस्कृत संसर्जना :

भारतमात्रं परिचाययति। मेघदूतं पठित्वा केवलं रामगिरेरामभ्य अलकां यावद् भारतस्य परिचयः समवाप्तुं शक्यते परन्तु राधावल्लभत्रिपाठीप्रणीतं ''धरित्रीदर्शनं'' पठित्वाऽभिराजराजेन्द्रमिश्र प्रणीतं ''मृगाङकदूतम्'' पठित्वा वा शर्मण्यदेशस्य वृहत्तरभारताङगभूतस्य बालीद्वीपस्यापि परिचयः सविस्तरं ज्ञायते। एवं हि अर्वाचीनसंस्कृतकाव्यसर्जनाया मानदण्डो व्यायतः प्रतिहपाद्यक्षेत्रं विस्तृततरं, प्रतिपाद्यविषयाणां संख्याऽपिभूयसी। आधुनिके गीतवाङ्गमये इदम्प्रथमतया परमाणु विस्फोटानां, तारकायुद्धविभीषिकाणां पाश्चात्यसंस्कृतेरकाण्डताण्डवानां भारतीय जीवनाचारपद्ध– तेरूत्तरोत्तरहासाणां च यादृशी चर्चा समवाप्यते तस्याः प्राचीनकाव्येषु आत्यन्तिकः अभावो परिलक्ष्यते।

सन्दर्भा :

(1) शास्त्री, डॉ.सत्यव्रत (1990) : श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्, प्रकाशक–मूलामल सचदेव प्रतिष्ठानम्, बैंकाक, पृष्ठ 38,39. ***(2)*** *शर्मा, श्रीरामदत्त : शिवचरितं, महाकाव्यं 1.1, पृष्ठ 05.* ***(3)*** *शर्मा, दीपिका रामकरण (1992) : प्रकाशक शारदा पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, पृष्ठ 24.* ***(4)*** *देशपांडे, डॉ.उमा (1992) : अर्चनम् – विश्वसंस्कृत प्रतिष्ठान, गुजरात, वडोदरा।* ***(5)*** *शर्मा, शुकदेव (1991) : मंगलानक्षत्रम्, प्रकाशक – वात्सल्य, नई बस्ती, सिनेमा रोड, नाभा।* ***(6)*** *शुक्ल, डॉ. रमाकान्त (1992) : अर्वाचीन संस्कृत साहित्य सर्वेक्षणम्, देववाणी परिषद, नई दिल्ली, पृष्ठ 28.* ***(7)*** *तथैव, पृष्ठ 30.* ***(8)*** *श्रीरोचन्द्रदाश (1991) : तारूण्यशतकम्, प्रकाशक विद्यापुरी, कटक।* ***(9)*** *घोष, डॉ. दीपक (1992) : राजनीति लीला शताधिकम्, प्रकाशक देववाणी परिषद, नई दिल्ली, पद्य सं. 2.* ***(10)*** *शर्मा, डॉ. मंजुलता एवं मिश्र, डॉ. राजेन्द्र (सम्पादक) (2004) : अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा, पृष्ठ 14,15.*

❁ ❁

UGC Approved Journal
Research Link
Since March 2002
An International, Registered & Referred Monthly Journal : Sanskrit Literature
Research Link - 162, Vol - XVI (7), September - 2017, Page No. 147-149
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

'मेघदूतम्' में सांस्कृतिक एवं धार्मिक पर्यावरण का स्वरुप

प्रस्तुत शोधपत्र में कालिदास की कालजयी कृति 'मेघदूतम्' में सांस्कृतिक एवं धार्मिक पर्यावरण के स्वरुप पर विचार किया गया है। प्रत्येक संस्कृति में अपने-अपने तरीके की प्रार्थना पद्धतियाँ हैं। भारतीय संस्कृति में पूजा पद्धति का विशेष महत्व है, इस पूजा पद्धति में धार्मिकता को विशेष स्थान है। वैदिक समय से यज्ञ-पद्धति में प्रकृति का विशेष ध्यान रखा जाता था। यज्ञों का प्रकृति संरक्षण एक महत्वपूर्ण कारण था। महाकवि कालिदासजी ने भी यज्ञ से या मेघ से पूजा अर्चना करवाई है, वे धार्मिकता को नहीं भूले, चाहे महाकाल की संध्या बंधन हो या कैलाश पर शिवजी की पूजा हो, प्रकृति से अलग नहीं होने देते हैं।

संतोष कुमार अहिरवार* एवं डॉ.एस.एस.गौतम**

प्रकृति मानव जीवन की चिर सहचरी है। उसका भारतीय संस्कृति के साथ अनादि काल से ही सम्बन्ध जुड़ा चला आ रहा है। भारतीय संस्कृति को हम इस प्रकार से अलग नहीं कर सकते हैं। वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति और धार्मिकता का अनुपम संयोग रहा है।

भारत की संस्कृति संरचना अत्यन्त सजीव एवं सुन्दर है, जो संस्कृति ने हमेशा सजीव संभाली है। संस्कृति से कोई भी भावुक कवि किस प्रकार अलग रह सकता है। यही कारण है कि समस्त भारतीय कवियों ने येन केन सांस्कृति और धर्म को हमेशा से वर्णन का विषय बनाया है।

महाकवि कालिदास भारतीय परम्परा के कवि हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति के साथ धार्मिक की तार–तम्यता स्थापित की है।

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः,
प्रसादास्त्वां तुलयितुमलमलं तैस्तैर्विशेषैः।। (1)

अलकापुरी की उच्चाट्टालिकायें तुम्हारे साथ पूर्ण सादृश्य रखती हैं। यदि तुम्हारे साथ चंचलता विद्युच्छता है, तो उन भवनों में भी चंचल ललित ललनायें हैं। यदि तुम्हारे पास इन्द्रधनुष है, तो उन भवनों में भी विविध रंगों के चित्र सुशोभित हो रहे हैं। यदि तुम स्निग्ध गंभीर घोष कर सकते हो, तो वहाँ की भूमि नीलम से जुड़ी हुई है, यदि तुम ऊँचे पर हो, तो अलका के प्रासाद भी गगन चुम्बी।

इस श्लोक में भारतीय संस्कृति के विविध रूपों का सम्बंध स्थापित करने की कोशिश की गई है, यहाँ पर संगीत, चित्रकला, स्थापत्य कला समृद्धि का वर्णन एक ही स्थान पर कर दिया गया है। मेद्यदूत इतनी अनुपम कृति है, इसमें भारतीय संस्कृति के समस्त आयामों को एक साथ स्थापित किया गया है। भारतीय संस्कृति लालित्य बोध, बस्तुबोध, रसबोध और कलाबोध का परिचय सहज रूप से ही करवा दिया गया है।

मेघदूत केवल श्रृंगार प्रधान रचना नहीं है और न ही केवल इसमें भारतीय संस्कृति के सभी आयामों को बड़ी ही चतुरता से उन्नति के पथ पर अग्रसर किया गया है। इसका वैज्ञानिकता के साथ–साथ के सांस्कृतिक एवं धार्मिक महत्व है। कवि की नवीन विचारधारा सूक्ष्मदृष्ट, सरलता एवं कल्पना की अनूठी परम्परा ने मनोहर चित्र खींचा है।

भारतीय संस्कृति के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक दार्शनिक पक्षों को महाकवि कालिदासजी ने बड़े सुन्दर तरीके से स्पष्ट किया है तथा लोक व्यवहार, रीति–रिवाज, खान–पान, विवाह, संस्कार, पेड़–पौधे, पर्वत, नदियाँ, भूमि–फसलें पशु–पक्षियों को अपने मेघदूत में स्थान ही नहीं दिया, अपितु एक दूसरे का अटूट सम्बन्ध स्थापित किया है। यथा–

वेणीभूत प्रतनुसलिता सावतीतस्य सिन्धुः,
पाण्डुच्छाया तटरूहतरूभ्रशिभि जीर्णपर्णै।
सौभाग्यं ते सुभग! विरहा वस्धया व्यज्जयनती,
कार्श्यन्येन त्यजति विधिना स लतयैवोप पाद्यः।। (2)

हे! सुभग मेघ वेणी की तरह थोड़े जल वाली, तट पर उगे हुए वृक्षों से गिरने वाली, सूखे हुए पत्तों से पीले वर्णवाली, अतएव वियोगावस्था से प्रवाह स्थित तुम्हारे सौभाग्य को प्रकाशित करती हुई नदी निर्विन्ध्या जिस प्रकार से कृशता को छोड़े, तुम्हें उस विधि को अवश्य करना चाहिए।

रीति–रिवाज :

भारतीय संस्कृति में विविध रंग भरे हुए है एवं रंग इसको विकृत नहीं करते हैं, अपितु एक मनोहर चित्र खींचते हैं, पर

**शोधार्थी, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट-सतना (मध्यप्रदेश)*
***प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया (मध्यप्रदेश)*

महाकवि कालिदास जी की भारतीय भारतीय संस्कृति में जो रंग इसको सुन्दर बनाते हैं, वह भारतीय संस्कार को रूप, समाज जिसमें जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था रिश्ते नाते को रख सकते हैं, वह बिना समाज का कोई अर्थ नही रह जाता है, क्योंकि महाकवि कालिदास जी पूरे मेघदूत में अलग नहीं किया।

कवि कालिदास जी के भारतीय संस्कृति में कहीं वे यक्ष जाति का वर्णन करते हैं, तो कही बनेचर, सिद्ध, गन्धर्व आदि सानिध्य में रहने वाली जातियों का वर्णन करते हैं। इतना ही नही मालवा प्रदेश के कृषक स्त्रियों का वर्णन हो या उज्जैनी की वारवन्तः वैश्यओं का वर्णन हो सभी को रीति–रिवाज पर ही आश्रित रखा है।

यक्ष :

यक्ष जाति अलकापुरी में निवास करती है। इनके राजा का नाम कुवेर है, यह कुबेर की सेवा करता है। उनको पुष्पोद्यानों एवं कोषग्रहों की रक्षा करने वाले बतलाए गए हैं। धनाधिपति कुबेर को महाकवि कालिदास जी ने मक्षेश्वर कहा है। यथा–

गन्तव्या ते वसति रलका नाम मक्षेश्वराणाम् (3)

वनेचर :

स्थिता तस्मिनवनचरबधूमुक्तंकुञजे मुहूर्त (4)

महाकवि ने मेघदूत में वनचर जाति के स्त्री–पुरूषों का उल्लेख किया है, जिससे ज्ञान होता है कि ये लोग अपनी स्त्रियों को लेकर प्रायः आजीविका की खोज में एक वन से दूसरे वन में घूमा करते थे। स्त्रियाँ की स्वच्छन्द रूप से वन की विहार किया करती थी, कवि ने इस प्रकार की एक वनचर जाति का आम्रकूट वन की शीतलता का सेवन करने वर्णन आया है।

भारतीय संस्कृति में विदाई का भी महत्व कम नही है, यहाँ पर स्वागत हृदय से किया जाता है।

काले काले भवित भवतो यस्त संयोगमेत्य,
स्नेहव्यक्तिंतश्चिरविरहजं मुञचतो बाष्पमुष्णम् (5)

रिश्ते–नाते :

रिश्ते–नाते भारतीय संस्कृति की विशेषता है। इसे कवि संस्कृति के माध्यम से जन मानस को समझाने का प्रयत्न करते हैं। यहाँ चाहे खून के रिश्ते हो या प्रेम के रिश्ते सभी की अपनी एक गरिमा है। एक मर्यादा है, इसका निर्वाह कवि संस्कृति के माध्यम से समझाते हैं, मेघदूत में दोनों ही प्रकार के रिश्तों का सुन्दर ढंग से संस्कृति के माध्यम से समझाए गए हैं।

पति – पत्नी प्रेम का तो पूरा मेघदूत ही उदाहरण है। यक्ष – यक्षिणी की विरह वर्णन, विरह दशा तथा पत्नी व पति से अलग होने का दुःख कवि ने संस्कृति के माध्यम से ही करवाया गया है। यथा –

अधिक्षामां विरहशयने सन्निवषण्णैंकपार्श्वाम्,
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशो।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या –
तामेवोष्णै र्विरहमहतीम श्रुभिर्यापयन्तीम ''।। (6)

वेश–भूषा :

किसी भी संस्कृति की स्पष्ट छठा वहाँ के रहन – सहन एवं वेश – भूषा में दिखाई देती हैं। कवि भारतीय संस्कृति का पूर्णतः अनुकरण करता है, उसका एक ही पात्र भारतीय संस्कृति की सीमा नहीं लांघता है। परिधान की कल्पना बड़ी सुन्दर है, वह नारीरूपी नायिका के संस्कृति रूपी परिधान पहचानना नहीं भूलते। यथा –

तस्याः किंचित्कर घृतमिव प्राप्तवानीरशाखं,
नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे! लम्बमानस्य भावि,
ज्ञातास्वादों विव्रतजघनां को विहातुं समर्थाः।। (7)

वनस्पतियाँ और भारतीय संस्कृति :

बहुत समय पूर्व मनुष्य वनों पर पूर्णतः निर्भर था, वह भोजन तथा वस्त्र वनों से प्राप्त करता था, व्यक्ति ने अपना विकास किया है, लेकिन इतना नहीं की वह पूर्ण निर्भर हो सके, इस इसलिए भारतीय संस्कृति में बड़ा महत्व है। कवि कालिदास जी ने मेघदूत में वनस्पति का विशद् वर्णन किया है। धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व कम नहीं हुआ है, भारतीय संस्कृति में पेड़– पौधों को देवता जैसा पूजा गया है तथा देव तुल्य स्थान दिया गया है, उन्हें मंदिर घरों में स्थान दिया गया है।

महाकवि कलिदास जी ने मेघदूत में निम्नलिखित वनस्पतियों का वर्णन किया है तथा स्थान–स्थान पर उनका भारतीय संस्कृति के अनुसार महत्व भी बताया गया है।

अशोक वृक्ष :

मेघदूत में इस वृक्ष का कई स्थानों पर वर्णन आया है, यह वृक्ष पीलापन के लिए हुए हरे पत्ते,फूल लाल तथा पीला होता है।

''रक्ताशोकश्चल किसलयः केसरश्चात्र कान्तः,
प्रत्यासन्नौ कुरवकवृते र्माधवीमण्डपस्य '' (8)

नदियाँ :

नदियाँ भारतीय संस्कृति की प्राण हैं।विश्व में कोई भी संस्कृति नदियों से अलग नहीं हो सकती। नदियाँ मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, इस कारण भी इनका महत्व बहुत अधिक है। कालिदास जी ने अपने मेधदूत में भारत की अधिकांश नदियों का उल्लेख किया है :

(अ) गंगानदी :

यह भारत की प्रसिद्ध नदी है, जिसका उद्गम गंगोत्री से हुआ है, यह भारत के उत्तरी पूर्वी प्रदेश में बहती हुई बंगाल की खाड़ी में समुद्र से मिलती है। इसका जल अत्यन्त पवित्र माना जाता है।

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां,।
तस्या एवं प्रभव मचलं प्राप्त गौरं तुषारैः ।। (9)

(ब) क्षिप्रा नदी :

कालिदास ने इसे ऐतिहासिक नदी के रूप मे अमर बना दिया है, जिसके तट पर उज्जैन स्थित है। यह मालवा की प्रमुख नदी है।

यत्रं स्त्रीणां हरति सुरतग्लानि मड़ाग्नुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः। (10)

धार्मिक :

धर्ममूलं जगदजन नान्यदर्भाद विशिष्यते (11)

धर्म जगत का आधार है। समस्त प्राणियों के कल्याण को ध्यान में रखकर धर्म सम्बन्धी नियमों का प्रचलन होना चाहिए। सभी प्राणियों को ध्यान में रखकर धर्म का सम्पादन होना चाहिए।

इसमें धार्मिक की महती आवश्यकता होनी चाहिए, क्योंकि धार्मिक के विरूद्ध मानव किसी भी प्रकार से सुखी नहीं रह सकता। इसी कारण कालिदास ने मेघदूत में धार्मिक नियमों का प्रवचन किया है।

देव स्थान :

मेघदूत के ग्रन्थों में भारत के अनेक देव स्थानों का स्वभाविक रूप से वर्णन हुआ है। देव स्थान की धार्मिक सुन्दरता एवं देव मूर्तियों का स्पष्ट उल्लेख किया गया।

महाकालेश्वर :

इस महानगरी के आंचल में भारतीय संस्कृति, सभ्यता की गौरवमयी असीमित मात्रा में छिपी हुई है, यह एक तीर्थ स्थान है। यहाँ पर महाकालेश्वर का जगत प्रसिद्ध मंदिर है। यहाँ पर कवि मेघ से महाकालेश्वर की संध्या आरती के लिए कहलवाते हैं। यथा–

अत्यन्यस्मिज्चलधर! महाकालमासाद्यः काले,
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः (12)

देवगिरि :

देवगिरि पर स्वामी कार्तिकेय का प्रसिद्ध मंदिर है। कवि के अनुसार यह तीर्थ स्थान पवित्र स्थान है। यहाँ शिव और पार्वती का निवास है।

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा,
पुष्पासारैः स्नषयतभवान्त्योमगङ्गजलाद्रैः।। (13)

पूजा पद्धति :

प्रत्येक संस्कृति में अपने – अपने तरीके की प्रार्थना पद्धतियाँ हैं। भारतीय संस्कृति में पूजा पद्धति का विशेष महत्व है, इस पूजा पद्धति में धार्मिक को विशेष स्थान है। वैदिक समय से यज्ञ – पद्धति में प्रकृति का विशेष ध्यान रखा जाता था, यज्ञों का प्रकृति संरक्षण एक महत्वपूर्ण कारण था। महाकवि कालिदास जी भी यज्ञ से या मेघ से पूजा अर्चना करवाई है। वह धार्मिकता को नहीं भूले, चाहे महाकाल की संध्या बंधन हो या कैलाश पर शिव जी की पूजा हो प्रकृति से अलग नही होने देते हैं। यथा –

कुर्वन् संध्यावलिपटहतांशूलिनः श्लाधनीया,
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम् (14)

शकुन–विचार :

भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार शकुन विचार धार्मिक नियमों में आता है। इस कारण महाकवि कालिदास जी को शकुन विचार के अनुसार शुभ होने के कारण मेध को यात्रा करने को कहता है।

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां,
वामश्चायं तदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमा वद्धामालां,
संविष्यन्ते नयनसुभगं रवे भवन्तं बलाकाः।। (15)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक और धार्मिक पर्यावरण जीवन पद्धति पर चलेंगे, तभी हम संस्कृति एवं धार्मिक जीवनोद्धार में एक महान योगदान कर पायेंगे।

संदर्भ :

(1) उत्तर मेघ – 01.
(2) *पूर्व मेघ – 30.*
(3) *पूर्व मेघ – 07.*
(4) *पूर्व मेघ – 15.*
(5) *पूर्व मेघ – 12.*
(6) *उत्तर मेघ – 29.*
(7) *पूर्व मेघ – 45.*
(8) *उत्तर मेघ – 18.*
(9) *पूर्व मेघ – 53.*
(10) *पूर्व मेघ – 32.*
(11) *महाभारत अरण्यपर्व – 34/47.*
(12) *पूर्व मेघ – 38.*
(13) *पूर्व मेघ – 47.*
(14) *पूर्व मेघ – 38.*
(15) *पूर्व मेघ – 09.*

संदर्भ ग्रन्थ :

(1) महाकवि कालिदास (2012) : मेघदूतम्, प्रकाशक– हंसा प्रकाशन, जयपुर।

(2) *महर्षि वेद व्यास : महाभारत।*

❁ ❁

UGC - Approved - Journal

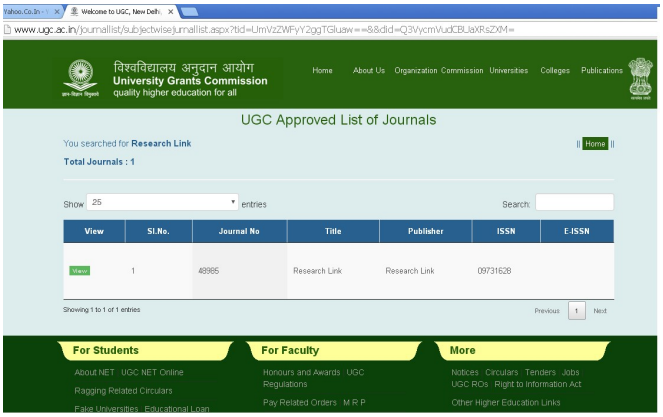

UGC Journal Details

Name of the Journal :	Research Link
ISSN Number :	09731628
e-ISSN Number :	
Source:	UNIV
Subject:	Accounting;Anthropology;Business and International Management;Economics, Econometrics and Finance(all);Education;Environmental Science(all);Finance;Geography, Planning and Development;Law;Political Science a;Social Sciences(all)
Publisher:	Research Link
Country of Publication:	India
Broad Subject Category:	Arts & Humanities;Multidisciplinary;Social Science

Print